Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.4, April, 2025

"संस्कृत काव्य-परम्परा और शब्दशास्त्र"

डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
ने.मे.शि.ना.दास (पी.जी.) कॉलेज,बदायूँ

****

शोध सार

संस्कृत काव्य-परम्परा और शब्दशास्त्र" इस शोध आलेख में संस्कृत साहित्य की काव्यात्मक परम्परा तथा शब्दशास्त्र (भाषाविज्ञान) के अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में शब्दार्थ, अलंकार, रस, छन्द और व्याकरणिक संरचना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस अध्ययन में भामह, दण्डी, आनन्दवर्धन, कुन्तक आदि आचार्यों के सिद्धान्तों के आधार पर काव्य और शब्द-विज्ञान के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों की व्याख्या की गई है। साथ ही, पाणिनीय व्याकरण, निरुक्त तथा यास्क के विचारों के प्रभाव को भी रेखांकित किया गया है। यह शोध संस्कृत काव्य की भाषिक सूक्ष्मताओं तथा उसके शास्त्रीय आयामों को समझने में सहायक होगा।

मुख्य शब्द : *संस्कृत काव्य, शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र, अलंकार, रस सिद्धान्त*

****

'शब्द' और 'अर्थ' चिन्तन के मुख्य उपादान हैं। काव्य से लेकर शास्त्र तक इनकी अव्यवहित गति है। ये वस्तुतः एक ही हैं और ग्राह्य-ग्राहक भाव से सम्पृक्त होकर अपने युगपद् अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं। क्योंकि शब्द का अर्थ भी शब्द ही होता है। तो, 'शब्द' शब्द और अर्थ दोनों स्थितियों में शब्द ही होता है। महाकवि कालिदास अपने **रघुवंशम्** महाकाव्य के मङ्गलाचरण में शिव और शक्ति को इसी रूप में प्रणाम किया है। देखिए-

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"

(रघुवंशम्-1/1)

अतः शब्द और अर्थ का जितना महत्वपूर्ण स्थान शास्त्र में है, उतना ही काव्य में भी है। शब्द आकाश का गुण है। आकाशवतद्वृत्ति से शब्द की सत्ता सर्वत्र है। चिन्तन के जो भी आयाम या प्रस्थान हैं, उन सब में शब्द अनुस्यूत है। शब्दशास्त्र का मूल सिद्धान्त तो शब्दार्थ-चिन्तन ही है। शब्दाद्वैतवादी आचार्य भर्तृहरि तो यहाँ तक कहते हैं कि संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जो शब्द का आश्रय लिये बिना प्रकट हो सके। समस्त पदार्थ-ज्ञान शब्द के माध्यम से ही होता है-

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।"

(वाक्यपदीयम्- 1/123)

तो, शब्द और अर्थ की की दृष्टि से काव्य और शास्त्र में महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। शतपथ ब्राह्मण में काव्य की अधिकरणभूता **वाक्** को ही सबका मूल आधार कहा गया है-

"वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे।"

(शतपथ ब्राह्मण-6/5/3/4)

महाकवि भट्टि का **भट्टिकाव्य** तो शब्दशास्त्रीय प्रयोगों से ओतप्रोत है। इस ग्रन्थ में पदे-पदे क्रियापदों के विलक्षण प्रयोग दिखायी देते हैं। संस्कृत काव्य और शास्त्र का समेकित दर्शन-लाभ का सर्वोत्तम स्थल भट्टिकाव्य ही है। पदवाक्यप्रमाणपारावारीण महाकवि भवभूति ने अपने **उत्तररामचरितम्** नाटक में अन्ततः कह ही दिया-

"पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा,
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः;
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।।"

(उत्तररामचरितम्- 7/21)

यहाँ पर **ब्रह्मविदः कवेः** पद विद्वान् वैयाकरणों के लिए आया है।स्वयं **ऋग्वेद** इसमें प्रमाण है। यथा-

"पतङ्गो वाचो मनसा विभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भेऽन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो निपान्ति ।।"

(ऋग्वेद- **10/177/2)**

यहाँ पर **कवि** शब्द ऋषि या मनीषी का वाचक है। कहा भी गया है कि, "जो ऋषि नहीं है, वह कवि नहीं हो सकता"- **"नाऋषिः कविर्भवति।** "यह ऋषि कौन है? वह ऋषि वैयाकरण ही है। क्योंकि वहीमोक्षदायिनी **परा वाक्** को ज्ञान के स्थान में (**ऋतस्य पदे)** सुरक्षित करता है। चौदह विद्याएही ज्ञान के स्थान हैं। ये चौदह विद्याएँ- **पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष्** हैं। यही ज्ञान के स्थान हैं। प्रसिद्ध ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन भी स्वीकार करते हैं-" **प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः।**" पुनः "**काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैः यः समाम्नातपूर्वः"** इस उद्घोष से सिद्ध है कि विद्वानों ने ध्वनि को ही काव्य का आत्मा माना है। ये विद्वान् कौन हैं? इसका निराकरण आचार्य मम्मट ने उत्तम काव्य (ध्वनि काव्य) के प्रसङ्ग में किया है- **" बुधैः वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः" (काव्यप्रकाश-1/4 की टीका में)।**

यहाँ विद्वान् **(बुधैः)** शब्द वैयाकरणों के लिए आया है। तो, काव्य और शास्त्र (व्याकरण शास्त्र) दोनों में पदे-पदे अत्यन्त नैकट्य है। सहृदयत्व ही काव्यास्वाद में प्रधान हेतु है। सहृदय का अर्थ है- संवेदनशील। संवेदनशील का अर्थ है- परसुखदुःखानुगामी होना। दूसरे की संवेदना को, उसके अभिप्राय को समझना ही सहृदयत्व है। वक्ता और श्रोता की अन्यथा स्थिति में इसका प्रतिकूल भाव उपस्थित हो जाता है। यथा-

" नारीणाणनुकूलमाचरसि चेज्जानासि कश्चेतनः (काव्यप्रकाश-9/354) में श्रोता और वक्ता एक दूसरे के विपरीत अभिप्राय के कारण अन्यथा अर्थ का ही ग्रहण करते हैं। और भी, वाल्मीकीय रामायण में हनूमान् जी कहते हैं-

"यदि वाचं वादिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।"

(वाल्मीकीय रामायण सु. का. 27)

यही बात आचार्य भर्तृहरि स्वकीय **वाक्यपदीयम्** में स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"शिष्टेभ्य आगमात् सिद्धाः साधवो धर्मसाधनात्।
अर्थप्रत्यायनाभेदे विपरीतास्त्वसाधवः।।"

(वाक्यपदीयम्-1/27)

अर्थ-बोधकता (ग्राह्य-ग्राहक भाव) शब्द और अर्थ में समान रूप से विद्यमान रहता है। यही तत्व काव्य और शास्त्र को एक कड़ी में बांधने का कार्य करता है। यह अर्थ-बोधकता साधु-असाधु का अभेदक और धर्म-साधनता भेदक तत्व है। काव्य और शास्त्र दोनों विधाएँ समान रूप से अर्थावबोधक हैं। काव्यज्ञ का शास्त्रज्ञ होना परमावश्यक है। कवि राजशेखरकृत

काव्यमीमांसा में इस आशय को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है। **काव्यमीमांसा** के प्रारम्भ में राजशेखर ने राजशेखर **ने** स्वयं कहा है- **" अथातः काव्यं मीमांसिष्यामहे, यथोपदिदेश--------चतुष्टये शिष्टेभ्यः"** (काव्यमीमांसा-1)। अर्थात्-**" अब मैं काव्य की मीमांसा करूँगा, जिसका उपदेश श्रीकण्ठ भगवान् शिव ने ब्रह्मा आदि चौंसठ शिष्यों के लिए किया था।"**

यहाँ स्मरणी तथ्य यह है कि इस ककाव्यमीमांसा के प्रधानभूत **काव्यपुरुष** की नियुक्ति प्रजापति ने **भूः, भुवः और स्वः** इन तीनों लोकों में रहने वाली प्रज्ञा के कल्याणार्थ **काव्यविधा** के उपदेश के निमित्त किया था। अब इसी को यदि काव्यशास्त्रीय आयाम से देखें तो, नटराजराज भगवान् शिव ने आचार्य पाणिनि की तपस्या से प्रसन्न होकर सनकादि ऋषियों एवं तीनों लोकों के उद्धार की मङ्गलमय भावना से ही चतुर्दश सूत्रों को प्रकट किया था-

"नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चबारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।"

(नन्दिकेश्वर काशिका)

यहाँ दोनों ही स्थलों पर लोक कल्याण की भावना का ही प्राधान्य है।

कविवर राजशेखर पुनः कहते हैं कि, **" यह वह काव्यमीमांसा काव्य विषयक विवेचना है, जहाँ वाग्लव अर्थात् शब्द और अर्थ का विवेचन किया जाता है। जो व्यक्ति इस काव्यमीमांसा को नहीं जानता, वह शब्द और अर्थ के विवेचनात्मक शास्त्र से भी अनभिज्ञ है।"** देखिए-

"इयं सा काव्यमीमांसा मीमांसा यत्र वाग्लवे।
वाग्लवं न स जानाति न विजानाति यस्त्विमाम्।।"

(काव्यमीमांसा-1)

प्राचीन और नव्य वैयाकरण परम्परा इसी शब्दार्थ-सम्बन्ध के चिन्तन पर आधारित है। आचार्य पतञ्जलि ने **'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'** वार्तिक में इसका विस्तार से विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य वैयाकरणों ने भी शब्दार्थ-सम्बन्ध पर विस्तार से चर्चा की है। आचार्य भर्तृहरि कहते हैं कि, **"शब्द शब्द के रूप में अपने स्वरूप का बोधक है और अर्थ के रूप में पर-प्रकाशक है।"** यथा-

"आत्मरूपं यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपं च दृश्यते।
अर्थरूपं तथा शब्दे स्वरूपं च प्रकाशते।।"

(वाक्यपदीयम्-50)

कविवर राजशेखर काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में काव्य और शास्त्र के भेद से संस्कृत वाङ्मय के दो रूपों को वर्णन किया है। काव्य-निर्माण के लिए शास्त्र का अध्ययन परमावश्यक है। अतः कविकर्म के इच्छुक व्यक्ति को शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके ही काव्य-निर्माण में प्रवृत्त होना चाहिए। जिस प्रकार दीपक के अभाव में पदार्थों की प्रतीति सम्भव नहीं है ,ठीक उसी प्रकार से शास्त्रज्ञान के बिना काव्य-निर्माण असम्भव है। यथा-

"इह हि वाङ्मयमुभयथा -------तत्त्वार्थसार्थमध्यक्षयन्ति"

(काव्यमीमांसा-2) ।

वहीं पर शास्त्र के अपौरुषेय और पौरुषेय, दो भेद बताए गए हैं। अपौरुषेय वेद हैं। समस्त वेदों और उपवेदों का सारतत्त्व नाट्यवेद पञ्चम वेद है। इसमें सभी वर्णों क समान अधिकार है,ऐसा आचार्य द्रौहिणि का मत है। शिक्षा, कल्प, निरुक्त,

व्याकरण, छन्द और ज्योतिष्- ये छः वेदाङ्ग हैं, जिन्हें अनेक आचार्य मानते हैं। परन्तु यायावरगोत्रोत्पन्न राजशेखर अलङ्कारशास्त्र को सप्तम अङ्ग के रूप में स्वीकार करते हैं। क्योंकि अलङ्कारशास्त्र के परिज्ञान के बिना वेदार्थ-बोध सम्भव नहीं है। देखिए-

"तच्च द्विधा अपौरुषेयं पौरुषेयं च। ------ ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः।

"यथा- "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।"

(ऋग्वेद-1/164/20)

यह मन्त्र श्वेताश्वरोपनिषद् में है। स्पष्ट है कि अपौरुषेय शास्त्र के रूप में चार वेद और छः वेदाङ्गों का वर्णन किया गया है। वेदाङ्गों के अपौरुषेयत्व के विषय में विद्वानों के पृथक्-पृथक् मत हैं। वेदाङ्ग नित्य तो हैं किन्तु अपौरुषेय नहीं। हम पुनः केन्द्रीय विषय पर आते हैं। चर्चा काव्य और शास्त्र की हो रही है। कवियों ने शब्दशास्त्र का अवलम्ब लेकर गम्भीर भावों को अत्यन्त सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। एक बहुत ही रोचक आख्यान प्रस्तुत है-

गुजरात प्रान्त के अनहिल पत्तन के राजा जयसिंह के दरबार में वाग्भट नामक ख्यातिलब्ध कवि रहते थे। कवि वाग्भट की पुत्री पिता की ही भाँति परम विदुषी, कविकर्म में निपुण और सौन्दर्यादि गुणों से सम्पन्न थी। एक दिन राजा की दृष्टि उस कवि-पुत्री पर पड़ी और वह उसपर आसक्त हो गया। राजा ने उसे राजमहल की शोभा बनाने का निश्चय कर लिया। कवि वाग्भट के बहुत अनुनय करने पर भी राजा ने अपना निश्चय नहीं बदला। जब राजपुरुष उस कन्या को महल में ले जाने लगे तो, कवि वाग्भट बहुत रोए। अपने पिता की इस दारुण दशा को देखकर जो तर्कसङ्गत सान्त्वना दी, वह सुधी सहृदय को बलात् ही विस्मित कर देती है। वह अपने दुःखी पिता से कह रही है-

"तात वाग्भट! मा रोदीः कर्मणा गतिरीदृशी।

'दुष्' धातोरिवास्माकं गुणो दोषाय केवलम्।। "

अर्थात्-" हे पिता वाग्भट! आप मत रोइए। मेरी यह दुर्दशा मेरे कर्मों के फलस्वरूप ही हुई है। जैसे- **दुष्** धातु गुण होकर भी **दोष** ही बनती है (वैरभाव को प्राप्त हो जाती है, ठीक उसी प्रकार मेरे अनुकूल कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त मेरा यह सौन्दर्य और वैदुष्य आज मेरे लिए दोष बन गया है, अभिशाप हो गया है)।

दुष् धातु से **घञ्** प्रत्यय लगकर आर्धधातुकत्वेन गुणभाव को प्राप्त होकर **दोष** शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ कवि-पुत्री की युक्ति कितनी शास्त्रसङ्गत और शिष्ट है कि **दुष्** धातु गुण होकर भी दोष ही बनती है। यदि मेरे सौन्दर्यादि गुणों के कारण यह अनर्थ उपस्थित हुआ है ,तो इसमें दुःखी होने की बात नहीं है। स्पष्ट है कि ऐसे प्रसङ्ग काव्य और शास्त्र के घनिष्ठ सम्बन्ध को और दृढ़ कर देते हैं। कवि राजशेखर कहते हैं कि चौदह विद्याओं का ज्ञान व्यक्त स्वस्थ शतायुष्य का लाभ करके भी नहीं कर सकता। अतः विद्या के विस्तृत कलेवर से भयभीत सज्जनों के लिए समस्त विद्याओं से श्रेष्ठ पन्द्रहवीं विद्या के रूप में **काव्यविद्या** को उत्पन्न किया गया।

यायावरीय कवि राजशेखर **व्युत्पत्तिकविपाक** नामक एक पृथक् अध्याय ही दिया है, जिसमें **व्युत्पत्ति, कवि** और **पाक** इन तीन तत्वों पर विचार किया गया है। बहुत विस्तार में न जाकर हम केवल **व्युत्पत्ति** पर ही विचार करते हैं। आचार्यों का मत है कि अनेक शास्त्रों के अध्ययन, मनन और लोकव्यवहार के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा उत्पन्न अनुभव ही **बहुज्ञता** है। और यही बहुज्ञता **व्युत्पत्ति** है। व्युत्पत्ति की चर्चा काव्य और शास्त्र दोनों स्थलों पर समान रूप से हुई है, भेद केवल औचित्यानौचित्य एवं साधुत्वासाधुत्व का है। जहाँ पर काव्य में उचित-अनुचित का विवेचन **व्युत्पत्ति** है, वहीं शास्त्र में साधु और असाधु का विवेचन **व्युत्पत्ति** नाम से व्यवहृत है। इसी प्रकार **पाक** की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया गया है कि , "**परिणाम ही पाक है।**" यह आचार्य मङ्गल का मत है। **पाक** का अर्थ है- **प्रौढ़ता** या **कविकर्म की प्रौढ़ता।** पुनः शङ्का होती है कि **परिणाम** क्या है? तो, इसका समाधान यह है कि **सुबन्त** और **तिङन्त (नाम** और **आख्यात)** से युक्त श्रुतिसुखद शब्दावली की व्युत्पत्ति ही **परिणाम** है। तो, काव्य और शास्त्र का घनिष्ट सम्बन्ध सहज सिद्ध है। अन्ततः कविकुलगुरु महाकवि कालिदास के जीवन से सम्बद्ध एक रोचक किंवदन्ती के साथ, जो कि अष्टाध्यायी के सूत्रों की व्यावहारिकता पर आधारित है, इस शोधपत्र को सम्पन्न करते हैं।

किंवदन्ती है कि एक बार महाकवि कालिदास किसी काव्य-गोष्ठी में भाग लेने के लिए उज्जयिनी जा रहे थे। मार्ग अत्यन्त घने जङ्गल से होकर था। तो, जङ्गल में कालिदास की भेंट एक ब्रह्मराक्षस से हो गई, जिसने कालिदास से अष्टाध्यायी के चार सूत्रों पर समुचित समाधान की जिज्ञासावश चार प्रश्न किया। कहते हैं कि इन्हीं सूत्रों के समाधान से कालिदास को **महाकवित्व** प्राप्त हुआ। ब्रह्मराक्षस ने प्रथम प्रश्न किया- '**वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः**' (अष्टाध्यायी-1/2/65)। इसका समाधान करते हुए कालिदास ने कहा- "**वृद्धो यूना सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः।**" अर्थात्, " **युवक के साथ परिचय होने पर युवतियों के द्वारा वृद्ध त्याग दिये जाते हैं।**" ब्रह्मराक्षस ने दूसरा प्रश्न किया- **'स्त्री पुंवच्च'** (अष्टाध्यायी-1/2/66)। इसका समाधान करते हुए कालिदास ने कहा-"**स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तस्य गेहे विनष्टिः।**" अर्थात्, "**जिसके घर में स्त्री पुरुष के समान व्यवहार करने लगे, उसके घर का विनाश शीघ्र ही होता है।**" ब्रह्मराक्षस ने तीसरा प्रश्न किया- " **'एको गोत्रे'** (अष्टाध्यायी-4/1/93)। इस प्रश्न का समाधान करते हुए कालिदास ने कहा-" **एको गोत्रे स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति।**" अर्थात्, " **परिवार में प्रधान पुरुष वही है, जो परिवार का भरण-पोषण करता है।**" अन्ततः चतुर्थ प्रश्न किया गया-' **सर्वस्य द्वे' (अष्टाध्यायी-8/1/1)।** इस प्रश्न का समाधान करते हुए कालिदास ने कहा-" **सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती सम्पदापत्तिहेतुः।**" अर्थात्, " **सभी के (हृदय) में दो प्रकार के विचार होते हैं- सुमता और कुमति। सुमति सम्पत्ति का और कुमति विपत्ति का हेतु बनती है।**" हम देख सकते हैं कि कालिदास यहाँ कितना व्यावहारिक और शास्त्रसङ्गत समाधान प्रस्तुत किया है। उनका प्रत्येक समाधान काव्य और शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसमें मानव जीवन का सूक्ष्म मनोविज्ञान छिपा हुआ है। प्रसिद्धि है

कि इसी घटना के बाद कालिदास को **महाकवि कालिदास** का लोकविश्रुत विरुद प्राप्त हुआ। निष्कर्षतः शास्त्र काव्य की कषौटी है तो काव्य शास्त्र का फल है। काव्यशास्त्रियों ने शब्दशास्त्रीय परम्परा और उसके सिद्धान्तों को अनेकशः सम्मान दिया है। आचार्य पतञ्जलि ने स्वकीय **महाभाष्य** में स्पष्ट उल्लेख किया है कि, "**प्रधानं च षट्ष्वङ्गेषु व्याकरणं प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति**" (महाभाष्य-पस्पशाह्निक)। और इसीलिए शब्दशास्त्र के विषय में विश्रब्धतापूर्वक यह उद्घोष किया गया है कि, **"सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्।"**

"स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतिराम्बुच्छटा,
मूर्छन्मोहमहर्षि-हर्षविहितस्नानाह्निकाह्नाय वः।
भिद्यादुद्यदुदारदर्दुरदरीदीर्घादरिद्रद्रुम----------;
द्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदा मन्दाकिनी मन्दताम्।।"

Corresponding Author: **डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल**
E-mail: anubaikunth.7375@gmail.com
Received: 08 April,2025; Accepted: 24 April,2025. Available online: 30 April,2025
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License